कुमाऊँनी संस्कृति की झलक : लोकगीत

***विजय लक्ष्मी**

सारांश : कुमाऊॅ की सस्कृति अपनी अनोखी विशेषताओं के लिए विख्यात है इसी संस्कृति की विरासत में लोकगीतों का अपना विशेष महत्व है प्रस्तुत शोध लोकगीतों पर आधारित है प्रस्तुत शोध के उद्देय है–लोकगीतों का कुमाऊँ के लोगों के जीवन में महत्व, लोकगीतों का कुमाऊँ की संस्कृति में स्थान, लोकगीतों की परम्परा का अध्ययन, लोकगीतों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महत्व का अध्ययन एवं लोकगीतों के विस्मृत और अलक्षित तथ्यों को आलोकित करना।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध कुमाऊॅ की संस्कृति के परिचायक लोकगीतों पर केन्द्रित है। इस अध्ययन में ऐतिहासिक वर्णनात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है। जिससे कुमाऊॅ की संस्कृति में लोकगीतों की भूमिका का अवलोकन किया जा सके एवं इन लोकगीतों का कुमाऊॅ के लोगों के जीवन पर पडने वाले प्रभाव का वस्तुनिष्ठ चित्रण भी प्रस्तुत किया गया।प्रस्तुत शोध कार्य के लिये सहायक स्रोतो के रूप में विषय से सम्बन्धित साहित्य तथा पुस्तकें, पत्रिकाएँ, आलेख और प्रकाशित शोध कार्य सहायक सिद्ध हुए है।

लोकगीत धरती के गीत है तथा धरती हम उसे चाहे जिस नाम से जानते हों,वही मिट्टी की धरती है। लोक गीतों को धरती पल्लवित, पुष्पित व सुरभित करती है। मानव किसी देश में,किसी अंचल में रहे, मानव है। उसके दुःख–सुख, उल्लास–वेदना, उसकी भावनाऐं, प्रसन्नता, उसके दर्द की कहानी, मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पडती है। डॉ0 सदाशिव कृष्ण फडके ने लोक गीत को परिभाषित किया है –लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानों अकृत्रिम निसर्ग के श्वास–प्रश्वास हैं। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली क्षुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनन्दमयी गुफाऐं हैं। [1] लोकगीतों में समस्त लोक का व्यक्तित्व उभरकर आ जाता है । प्रत्येक मानस को वह अपना ही गीत महसूस होता है । इनकी एक अलग पहचान और मिठास है। इस सम्बन्ध में रामनरेश त्रिपाठी लिखते है। कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है,छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य है । सभी मनुष्यों के स्त्री–पुरूषों के मध्य में हदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही ग्राम्य गीत है। [2] इसी प्रकार देवेन्द्र सत्यार्थी कहते हैं कि लोकगीत हदय से खेत में उगते हैं। सुख के गीत उमंग के जोर से जन्म लेते हैं लेकिन दुःख के गीत खौलते हुए लहु से पनपते हैं और आसुओं के साथी बनते हैं।[3] अधिकाशतः लोकगीत स्थानीय लोगों द्वारा बनाये जाते हैं, जिन्हें वे ही गाते हैं। इन लोकगीतों में स्थानीय लोगों के रहन–सहन, संस्कृति, कठिन परिस्थितियों और सम–सामयिक विषयों, समाज में व्याप्त असमानताओं आदि पर तीक्ष्ण व्यंग देखने को मिलते हैं।[4] लोकगीतों को हदय में तन्मय करने के लिए लय (झंकार) की आवश्यकता होती है,फलस्वरूप वादों का प्रयोग आरम्भ हुआ। प्रातःकाल जब महिलाऐं चक्की चलाती है तो उसकी घरघराहट ही उनके स्वर में मिलकर वाद्य का रूप धारण कर लेती हैं। गाडी हांकने वाला व्यक्ति बैलों की घंटियों और खुरों की आवाज में ही अपना स्वर मिला लेता है। बर्तन मांजने वाली स्त्री बर्तनों की खनखनाहट को ही अपना गीत का माध्यम बना लेती है। इसी प्रकार कुमाऊँनी महिला बरसात की झडी और गाड–गधेरों (नदी–नालों) की सूँ–सूँ की आवाज को अपने स्वरों में ढालकर गीत का माध्यम बना लेती है। इस प्रकार प्रत्येक स्थान पर गाने वाले के लिये वाद्य उपस्थिति पाये जाते हैं। काठ की लकडियों, लोहे के चिमटों को छोड़कर धोबी जाति के लोग सूप और गागर बजाते हैं। दीपावली के दिनों में अहीर लम्बी बांस बजाते हैं। दीपावली के दिनों में अहीर लम्बी छडियों का प्रयोग करते है। भिखारियों में खंसरी, किंगरी और इकतारे को वाद्य रूप में सम्मान मिला है।[5] मैदानी गायकों का सबसे प्रिय वाद्य करताल है। पौराणिक गाथाओं में भी हम वाद्यों को किसी न किसी रूप में विद्यमान पाते हैं। शिव डमरू बजाते थे जो आज तक लोकवाद्य बना हुआ है। इसका प्रयोग नेपाल तथा उसके तराई प्रान्त के लोक जीवन में मिलता है। विष्णु के हाथ में शंख मिलता है जिसे

*शोध छात्रा, इतिहास विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय

बजाकर बिष्णु ने प्रथम नाद उत्पन्न किया था । रामायण काल में रावण,संगीततज्ञ था। यह प्रसिद्ध है कि वह शिव के नृत्य के समय मृदंग बजाया करता था। इसी प्रकार किम्बदन्ती है कि ब्रहाा ने ढोल की रचना त्रिपुर राक्षस के रक्त से मिट्टी सानकर (मिलाकर) तथा उसी चमडे से मढकर की थी। सामवेद को आदि संगीत का मूल स्रोत माना जाता है। साम का उपवेद गन्दर्भवेद है जिसमें सोलह हजार राग–रागनियों का उल्लेख है। लोक जीवन में आनन्द और उत्साह बढाने लोकगीतों की प्राचीनता के बारे में गोविन्द चातक का कहना है कि यदि 600 ई. पूर्व भारतीय बोलियों का काल माना जाय तो कुमाऊनी लोक गीतों की परम्परा बहुत पुरानी मानी जा सकती है।[6] यहॉ के लोकगीत अपनी युगभावना को भी प्रकट करते हैं । घटना प्रधान गीतों के आधार पर उनके रचना काल का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। प्रारम्भिक काल के धार्मिक गीतों में ऐतिहासिक युग के प्रथम चरण की छाप स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती है। उसके बाद के गीत वीर रस प्रधान गीतों में वीरगाथा काल और सामंतीयुग का प्रभाव तथा तदनन्तर के श्रंगार गीतों एवं कूटनीतियों षडयन्त्रों के वर्णनों से भरे गीतों व गाथाओं में चंद एवं परमार युग के समाज तथा राजकीय स्थिति द्वारा किया जाता अत्याचार तथा सामाजिक कठिनाईयॉ है। इस प्रकार यहॉ के लोकगीत प्रत्येक युग का सामाजिक इतिहास प्रस्तुत करते है। जैसे कि पांडव गीत तथा क्षेत्रपाल आदि देवताओं के संस्कृति के आरम्भिक स्तर की ओर संकेत करते है। ऐसे ही अनेक गीत उस युग की पूजा इत्यादि परम्पराओं के परिचायक भी है। जैसे–

देव खतेरपाल, घड़ी–घड़ी का विध्यन टाल,
मात महाकाली का जाया
चंड भैरों खेतर पाल
प्रचंड भैरों खेतर पाल
काल भैरों खेतर पाल
माता महाकाली का जाया
बूढ़ा रूद्र का जाया
तुमरो ध्यानो जागो।[7]

कुमाऊँ प्रदेश देवताओं की क्रीडा स्थली है। यहॉ गिरी राज हिमालय बसा है जो प्राकृतिक सुषमा का अपार भण्डार है। पक्षियों का कलरव, अलियों का गुंजन, बादल का गर्जन,पिक की तान आदि का जैसा रसास्वादन सहृदय इस स्थली में करते है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अपनी सौंदर्य सुषमा से युक्त का यह प्रदेश जिस प्रकार से अपना अलग ही महत्व रखता है,उसी प्रकार यहॉ के लोकगीतों पर भी यहॉ के सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब झलकता है। लोकगीत चाहे किसी भी भूखण्ड के हों अपनी स्वाभाविकता,सरलता,ओजस्विता तथा बोधगम्यता से विशिष्ट होते हैं, किन्तु इन सभी गुणों का सजीव वर्णन कुमाऊँ के लोकगीतों में पूर्णतया पाया जाता है। लोकगीत सभी प्रदेशों के मधुर और रसयुक्त होते हैं किन्तु प्रकृति के साहचर्य से युक्त कुमाऊँ के लोकगीतों का अलग स्थान है।[8]

कहा भी गया है कि लोकगीत सभी के सुन्दर होते हैं पर हिमालय के केन्द्र में वह अपनी प्रकृति की तरह अति सुन्दर हैं। यद्यपि कुमाऊँ शहरी चमक–दमक से दूर हैं। इस प्रदेश का जीवन अति सरल है। पर्वतीय क्षेत्र तथा शहरी सुविधाओं से दूर होने के कारण यहॉ की जीवन कठोर तथा परिश्रम युक्त है। इस प्रकार एक ओर यहॉ प्रकृति का उल्लासमय, कोमल वातावरण है तो दूसरी ओर जीवन में कठोरता की भी अधिकता है । इस कठोरता एवं कोमलता से युक्त भावों की अभिव्यक्ति यहॉ के लोकगीतों में हुई है। कुमाऊँनी लोक साहित्य के सभी विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से कुमाऊँनी लोकगीतों का वर्गीकरण में छपेली, न्यौली, चांचरी, भगनौल, झोडा, बैर, ऋतुगीत, बालगीत, कृषिगीत, देवता के गीत तथा त्यौहार गीत को रखा।[9] इसी प्रकार कृष्णानन्द जोशी ने कुमाऊँनी लोक गीतों का वर्गीकरण किया है। जैसा कि धार्मिक गीत, मेलों के गीत, बाल गीत, ऋतुगीत, कृषि सम्बन्धी गीत,परिसंवादात्मक गीत आदि ।[10] भवानी दत्त उप्रेती ने कुमाऊँनी लोकगीतों के वर्गीकरण में संस्कार गीत, ऋतुगीत, बालगीत, उत्सव गीत, जातिमूलक गीत, व्यवसाय मूलक गीत को रखा है।[11] कुल मिलाकर देखा जाय तो कुमाऊँनी स्थानीय जीवन के उल्लास,उमंग,करूणा तथा रूदन की कहानियों को चित्रित करते हुए प्रतीत होते है।

लोक गीतों में हास्य एवं व्यंग की भावनाएँ भी निहित रहती हैं। हास्य एवं व्यंग की झलक निम्नलिखित गीत में देखने को मिलती है–

दिदि मेरी बडी हौ सिया, भिन मेरो उजडा।
दिदि चिवैंछ भलि पगार, भिन पाइन न्छ खडा।।
दिदि ब्वैंछ भल बिंया, भिन ब्वैंछ भूसा।
दिदि मेरी हंस मुखिया, भिन भरिया गुसा।।[12]

जहॉ लोकगीत हास्य एवं व्यंग को प्रस्तुत करता है वही कुमाऊँनी लोकगीत स्थानीय जीवन के विभिन्न स्वरूपों (उल्लास,उमंग,करूणा,रूदन आदि) को प्रकट करते हैं–

हो गोरि गोरी धनां,बाजार बेचना ल्यायै अलुपता बगेडी आ आमा,
गोरि गोरि धनां कौतितिकिया, भौते छन अलुपाता मेरी राख्यैं फामां।
गोरि गोरि धनां पानि लाग्यो बजाजानि अलुपाता भैंस लाग्यो खुनखुनी,
गोरि गोरि धनां खाती माया ख्याडा हलनी हाली अलुपाता न निरगुनी ।
गोरि गोरि धनां त्यारा गावां होली कि मूंगा माला अनुपता कि गौलबंद,
गोरि गोरि धनां कि इजु लै माया मारि कि अलुपता बाहुली बंद।[13]

कुमाऊँनी लोकगीतों में विवाह–संस्कार गीत व राष्ट्रीय भावना से सम्बन्धित उद्‌गारों को भी व्यक्त किया हैं । प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू के निधन पर कुमाऊँ के लोक कवियों ने शोकाकुल हदय से कारूणिक उद्‌गार प्रकट किये–

कलेजी का चीरा हैगी, हिया का बेहाल
ऑखिम रटैण लैरी,जवाहर लाल।

इसी प्रकार इन्द्रिरा गाँधी के प्रधानमंत्री बनने पर नव जागरूक कवि गा उठता है–

हल हला आम
इन्द्रिरा गाँधी का हाथ देशै की लगाम [14]

यहॉ के गायकों ने लोक गाथाओं और कथाओं पर गाकर जन जीवन में अमिट छाप छोडी। कुमाऊँ के राजा मालूशाही व राजुली की प्रेम गाथाओं का इन लोकगीतों के माध्यम से गायकों ने बडी सुन्दर अभिव्यक्ति की है। कुमाऊँ का इतिहास एक प्रकार से इन लोक गीतों में छिपा है। हिन्दी साहित्यकार शिवानी ने कुमाऊँ के संस्कार गीतों के सम्बन्ध में इस ओर संकेत किया है कि उनकी भाषा अधिकाशतः ब्रज है। वे यह मानती है कि ये गीत सम्भवतः ब्रजक्षेत्र से कुमाऊँ में प्रचलित हुए होंगे। [15] अंत में यह कहना चाहेंगे कि वास्तव में ये गीत मानव मन की एकता और भारतीय संस्कृति के एकता के प्रतीक हैं। इन गीतों की विशिष्टता इनकी अनोखी लयकारी में है,जो अनमोल निधि की भॉति युगों–युगों से दादी–नानी की पीढियों से ग्रहणकर अगली पीढी द्वारा सुरक्षित रखी जाती रही हैं। आज के सिनेमाई युग में इन्हें सुरक्षित रखने की और भेद अधिक आवश्यकता है। कुमाऊँ में लोक गीतों की यह परम्परा तब तक जीवित है जब तक मनुष्य का अस्तित्व है।

सन्दर्भ

1. पोखरिया देवसिंह, लोक संस्कृति के विविध आयाम : मध्य हिमालय के सन्दर्भ पृष्ठ 13।
2. पोखरिया देवसिंह, पृष्ठ 13।
3. सत्यार्थी देवेन्द्र, धरती गाती है, पृष्ठ 107।

4. चौहान विद्या, लोकगीतों की पृष्ठभूमि, पृष्ठ 10।
5. बलूनी दिनेशचन्द्र, उत्तरांचल : संस्कृति, लोकजीवन, इतिहास एवं पुरातत्व, पृष्ठ 35–36।
6. चातक गोविन्द, भारतीय लोक संस्कृति सन्दर्भ : मध्य हिमालय, पृष्ठ–22।
7. भट्ट दिवा, उत्तराखण्ड की लोक साहित्य परम्पराः पृष्ठ 23–24।
8. उपलब्धि, 1979, पृष्ठ 54–55।
9. पाण्डे त्रिलोचन, कुमाऊँ का लोक साहित्य, पृष्ठ 74।
10. पोखरिया देवसिंह, पृष्ठ 14।
11. उप्रेती भवानी दत्त, कुमाऊँनी लोक साहित्य एवं गीतकार, पृष्ठ 16।
12. स्मारिका, अल्मोडा 1973, पृष्ठ 192।
13. वर्मा ललित कुमार, कुमाऊँ के मेले, पृष्ठ 30।
14. चंदोला सरला, उत्तराखण्ड का लोक साहित्य और जनजीवन, पृष्ठ 121–122।
15. पोखरिया देवसिंह ,पृष्ठ 25।